'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १४८ | वाराणसी, गुरुवार, २४ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

शान्तिसेना-समिति के सदस्यों में

रणोली (बड़ोदा) ३०-१०-'५८

निष्ठापत्र की निष्ठाओं का स्पष्टीकरण

शान्ति-सैनिक के लिए भ्रमण और संपर्क स्थान जरूरी

शंका :—दो तरह के शांति-सैनिक हो सकते हैं। (१) पाँच हजार व्यक्तियों के लिए सेवा करनेवाला और (२) घूमनेवाला। क्या यह ठीक है ?

समाधान:—पाँच हजार व्यक्तियों के साथ सम्पर्क सखनेवाला सैनिक भी घूमता ही रहेगा। पाँच हजार के पीछे एक सैनिक होने पर भी बड़े क्षेत्र में घूमनेवाले और सबके साथ संपर्क रखनेवाले कुछ लोग हों तो अच्छा ही है। वे सबकी मुश्किलें जानने के लिए उनके पास जायँगे और उन्हें मदद करेंगे, दोष निकालने के लिए नहीं। हरएक की योग्यता देखकर ही उसे काम दिया जायगा। फिलहाल बहुत-से लोग मिलेंगे, यह मानना परिस्थिति न समझने जैसा ही होगा।

बुनियादी उपाय ग्रामदान ही

शंका :-स्थानिक अन्याय के प्रश्नों पर सेवक क्या करें ? पुलिस की हिंसा के प्रति उनका क्या रुख रहे ? "रेजिस्ट नाट ईविल" का अर्थ क्या समझा जाय ?

समाधान :—समाज में हिंसा आदि जो चलता है, उन सबके लिए हमारे पास एक बुनियादी विचार है—समाज में सहयोग पैदा करना, ग्रामदान करना। वह काम हमारे हाथ में है ही। इसलिए दूसरे अन्यायों के निवारण में हम पड़ेंगे तो उलझन में फँस जायँगे। किन्तु जहाँ किसी अन्याय का निवारण उचित मालूम होता हो, वहाँ "सर्व-सेवा-संघ" से पूछना चाहिए और उसकी मान्यता मिलने पर ही उस काम को उठाना चाहिए। ऐसी हालत में सर्व-सेवा-संघ वहाँ दस-बीस मनुष्यों को मदद के लिए भी भेज सकता है। नेपोलियन बोनापार्ट को किसीने रोका नहीं। उसने काम कर दिया। इस तरह कोई अन्याय-निवारण का काम करे और उसे सिद्ध कर दे तो हम उसे नहीं रोकेंगे। किन्तु अभी हमें स्थानिक अन्यायों के निवारण की अपेक्षा ऐसा काम करना है, जिससे सबका समाधान हो। इससे लोगों में कुछ विश्वास पैदा होगा। फिर भी जहाँ किसी काम में पड़ना सबको उचित लगे, वहाँ पड़ सकते हैं।

सामने पाप ही मालूम न पड़े

"रेजिस्ट नाट ईविल" का स्पष्टीकरण गांधीजी ने इस प्रकार किया है कि "रेजिस्ट नाट ईविल विथ ईविल" याने पाप से पाप का प्रतीकार मत करो। किन्तु ईसामसीह के इस वाक्य में गहरा अर्थ छिपा है। वे कहना चाहते हैं कि आप ईविल को संगठित करते हैं और फिर सामने पाप है, उसका प्रतीकार करते हैं तो संगठित करने में आप उसे मान्यता देते हैं। इसलिए भक्त की भूमिका ऐसी होनी चाहिए कि उसे मालूम ही न हो कि सामने पाप है। दीपक को मालूम हो कि सामने अन्धकार है तो वह "दीपक" ही न कहलायेगा। दीपक को मालूम ही नहीं होता कि कहीं अन्धकार है। वह जहाँ जाता है, अन्धकार को मिटाता ही जाता है। इसलिए भक्त जहाँ जायगा, पूरा विश्वास कर हर व्यक्ति को जीत लेगा। ईसामसीह के कथन का यही अर्थ है। जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ेगा, हमें उसका अमल करने की आवश्यकता महसूस होगी। पाप का प्रतीकार करने में हम पाप को महत्त्व देते हैं, जैसे तमोगुण का प्रतीकार करने में हम तमोगुण के अस्तित्व को मानते हैं। यही इस कथन का अर्थ है। फिर भी फिलहाल हम इतने उन्नत नहीं हुए हैं कि हमें अन्याय दीखें ही नहीं। इसलिए अन्याय दीखता है तो हमें ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे हम कायर सिद्ध न हों, शूर सिद्ध हों। हम तत्त्वज्ञान की ऐंठ में चले जायँ और कुछ न करें और कायर सिद्ध हों, यह ठीक नहीं। इसलिए कायर सिद्ध न हों, इस दृष्टि से इस वाक्य का थोड़ा नीचा अर्थ भी किया जाय तो चल सकता है। मैंने 'एकनाथ के भजन' इस पुस्तक में सत्याग्रह पर काफी चर्चा की है, जिसे आप देख लें, जिसका इस कथन के साथ में संबंध है। ● ● ●

[गतांक से समाप्त]

प्रार्थना-प्रवचन

जम्मू (जम्मू-कश्मीर) ११-६-'५९

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय....!

मेरे प्यारे लड़को ! अपने यहाँ करीम जमाने से आज तक अपनी एक सभ्यता चली आयी है। अपने देश की एक सभ्यता है। उसमें इस शरीर को ही चोला समझते हैं। आजकल हम इसे शरीर कहते हैं और (अपना कपड़ा दिखाकर) इसे कपड़ा कहते हैं। लेकिन अपने देश के पुराने लोग यूँ समझते थे कि यह शरीर ही कपड़ा है, यह देह चोला है। तुम लोगों को यह समझने की बात है। हमारे ऋषियों ने यह समझा दिया है कि यह शरीर ही कपड़ा है। हम ढँके रहते हैं, हम अंदर रहते हैं। और यह ऊपर का चोला है। कपड़ा है। हम शरीर छोड़कर चले जायँगे तो यह कपड़ा ऐसा ही पड़ा रहेगा। उसे कौन उठायेगा ? क्योंकि वह खुद तो उठेगा नहीं ! वैसे ही इस शरीर में हम रहते हैं। हम जायँगे तो यह शरीर यहाँ पड़ेगा। इसकी लाश बनेगी। यह शरीर भी खुद नहीं उठेगा। दूसरे लोग इसे उठाकर ले जायँगे। इसे जलायेंगे या दफनायेंगे। यह ऊपर का कपड़ा है। हम इसके अन्दर हैं, छिपे हैं। ऊपर का यह कपड़ा गिर भी जायगा तो खुद नहीं उठेगा। मैं उठाऊँ तो उठेगा। वैसे ही शरीश में हम हैं। इस शरीर को प्राण निकल जाने के बाद दूसरे लोग उठाते हैं। जपुजी में कहा है 'करमी न आवे कपड़ा न दरी मोरब दुबारा' याने हमारे कर्म से कपड़ा मिलता है और भगवान की कृपा होती है तो मोक्ष मिलता है। शरीर ही हमारा कपड़ा है।

कपड़े का उपयोग

इन दिनों एक रिवाज चला है। गर्मी में भी लोग कपड़ा पहनते हैं। यह सभ्यता नहीं है। लेकिन यह रिवाज चला है। कारण इस शरीर के लिए लज्जा है, घृणा है, नफरत है। भगवान ने जो शरीर हमें दिया है, इसकी शरम नहीं होनी चाहिए। हमारे देश की सभ्यता यह है कि मनुष्यों को खुले बदन रहना चाहिए। हमारे देश के ऋषि खुले बदन सूर्य की किरणों में घूमते थे। शरीर को सूर्य नारायण की किरणें नहीं मिलेंगी तो शरीर फीका, कमजोर पड़ेगा। जिंदगी भी घटेगी। तुम लोगों को मालूम है ? गर्मी के दिनों में खेत की मिट्टी बहुत तपती है। उसपर सूरज की रोशनी पड़ती है तो वह गरम हो जाती है। अगर सूर्य नारायण ने गरमी नहीं पहुँचायी और मिट्टी गरम नहीं हुई तो बारिश होने पर भी बीज बोया तो फसल नहीं उगेगी। फसल इसलिए उगती है कि सूर्य की किरणें मिट्टी को गरम करती हैं। इससे उस मिट्टी में जान दाखिल हो जाती है। प्राण दाखिल हो जाता है। मिट्टी जानदार हो जाती है और फिर बारिश होती है। तो फसल उगती है। ऐसे ही हमारा यह बदन मिट्टी है। यह जब तपती है, तब इसमें भी प्राण, जान आ जाती है। इसलिए दिन में थोड़ी देर घंटा डेढ़ घण्टा बिलकुल खुले बदन रहना चाहिए और सूर्य की किरणें शरीर पर पड़नी चाहिए। ऐसा हम नहीं करेंगे तो जिंदगी घटेगी, अलावा शरीर फीका हो जायगा, बुद्धि में ताकत कम होगी। इसलिए शरम के मारे कपड़ा हमेशा पहने रहना अच्छा नहीं है। थोड़ी देर शरीर खुला रहना चाहिए। यह बात आज साइन्स सिखा रहा है कि सूरज की किरणें जब शरीर पर पड़ती हैं, तब शरीर में प्राण संचार होता है।

इन दिनों बच्चों को नंगे नहीं रहने देते हैं। आपको सुनकर शायद ताज्जुब होगा कि हम देहात में रहते थे और ९ साल तक बिलकुल नंगे घूमते थे। फिर उपनयन हुआ और हमने लंगोटी पहनना शुरू किया। फिर हम शहर में सीखने के लिए गये। तब पिताजी ने कहा, इसलिए स्कूल में धोती पहनकर जाते थे। लेकिन घर में आने के बाद धोती पटक देते थे और लंगोटी लगाये घूमते थे। इन दिनों बच्चों को बचपन से मुड़दे जैसे ढँक देते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे कमजोर हो जाते हैं। उनकी 'रिकेटी फ्रेम' होती है। हड्डी मजबूत, विकसित नहीं होती। उसमें ताकत नहीं रहती है। बच्चों को खुले बदन थोड़ी देर सूर्य की किरणों में रखना चाहिए। इसलिए आज हमने आरम्भ में यह नाटक कर लिया। इसमें शर्मिंदा होने की बात नहीं है। झूठ बोलने की, गलत काम करने की बात नहीं है। हाथों से किसीको मारा या पीटा तो शर्मिंदा होना है, यह समझाने के लिए हमने आरम्भ में नाटक कर लिया।

संस्कृत सीखो

यहाँके बच्चों में और बच्चियों में काफी उत्साह है। आज सुबह 'गर्ल्स हाई स्कूल' की लड़कियाँ हमसे मिलने आयी थीं। मैंने दर्याफ्त किया तो इंग्लिश, हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषय सीखती हैं, ऐसा मालूम हुआ। यह सारा उन्होंने बताया। हमने उनसे एक सवाल पूछा कि इतने सारे विषयों में से कौनसे विषय में ज्यादा मजा आता है। बहुत सी लड़कियों ने कहा कि संस्कृत में। मैं लड़कों से पूछना चाहता हूँ। संस्कृत में जिनको ज्यादा मजा आता है, वे लड़के हाथ ऊपर करें। (आधे से अधिक लड़कों ने हाथ ऊपर किये) जम्मू के लड़के-लड़कियों को संस्कृत के लिए जितना प्यार है, उतना और किसी विषय में नहीं है। यह एक बहुत बड़ी बात है। इससे हमें बड़ी खुशी होती है। देखो, मेरे प्यारे बच्चो, तुम खूब संस्कृत सीखो। उपनिषद, गीता सीखो। जिससे हमें आत्मा का ज्ञान मिलेगा। "हम कौन हैं। इस जिन्दगी में क्या करने आये हैं ?" यह सब विद्या संस्कृत में है। मुझे खयाल नहीं था कि जम्मू के लड़के, लड़कियाँ संस्कृत पसन्द करते होंगे। सुनकर मुझे अचरज भी हुआ और बड़ी खुशी भी हुई। क्योंकि आखिर संस्कृत में इस देश का सारा ज्ञान भरा पड़ा है। वह हमारे बाप की स्टेट है। इतना ज्ञान और किसी भाषा में नहीं मिलता है। इतना कीमती ज्ञान संस्कृत में है।

निडर सेवकों की आवश्यकता

यहाँ जम्मू-कश्मीर में हमें आये तीन हफ्ते हो गये। मैंने शान्ति-सेना की माँग की। मैंने कहा कि ऐसे लोग मुझे चाहिए, जो किसीको मारेंगे, पीटेंगे नहीं। सबपर समान प्यार करेंगे। निड़रता से लड़नेवालों के बीच जाकर उनको रोकेंगे और कहेंगे कि प्यारे भाइयो, लड़ो मत, झगड़ो मत। लड़ना-झगड़ना गलत है। इसमें देश का और दुनिया का नुकसान है। इस तरह बीच में निड़रता से, हिम्मत से जायँगे। लाठी लेकर नहीं जायँगे। लेकिन हिम्मत से लड़ाई रोकेंगे।

नारद मुनि की कहानी आपको मालूम होगी। वाल्मीकि पहले डाकू थे। शिकार करके, जानवरों को मारकर उसीका भोजन करते थे। लोगों को लूटते-पाटते थे। वाल्मीकि ने नारद

मुनिपर हमला किया। नारद मुनि ऐसे ही शांत रह गये। उनको न गुस्सा आया, न वे भागे ही। ऐसा अनोखा जानवर वाल्मीकि ने नहीं देखा था। डर से भागनेवाले या गुस्से से हमला करनेवाले– ऐसे दो ही प्रकार उसने देखे थे। नारद मुनि शांतिपूर्वक अंगुली से वीणा बजा रहे थे और 'जय जय रामकृष्ण हरि, जय जय रामकृष्ण हरि' कह रहे थे। यह देखकर वाल्मीकि पिघला और नारद मुनि के चरण छूकर रोने लगा। उसने कहा : "मैं पापी हूँ। मुझे बचाओ।" नारद ने कहा : "उठो, आज तक जो किया, वह और तेरे जनम-जनम के पाप पश्चात्ताप से कट गये। तेरा नया जन्म हुआ है, ऐसा समझो।" वाल्मीकि ने घबड़ाकर पूछा : "आपने तो क्षमा कर दी, पर क्या भगवान भी क्षमा कर देगा?" नारद ने कहा : "पुराना वाल्मीकि मर गया, तू नया जन्मा है।" उन्होंने उसे समझाया कि "मान लो, किसी गुफा में १० हजार साल का पुराना अन्धेरा है। वहाँ तुम लालटेन लेकर जाओगे तो पुराना अन्धेरा खत्म हो जायगा। तुमने रामजी का नाम लिया और पुराने पाप का पश्चात्ताप हुआ तो वह ऐसे ही कट जाता है।" तबसे वाल्मीकि ने लुटेरे का धंधा छोड़ दिया और रामजी का जप ही करता रहा। फलतः उसकी बुद्धि में प्रकाश पड़ा और वह महाकवि बन गया। बाद में उसे तुलसीदास ने घर-घर पहुँचाया। वाल्मीकि में इतना फर्क इसलिए हुआ कि उसे नारद ऐसे मिले, जो न गुस्सा करते थे और न डरते थे।

जुल्म की बुनियाद

इस तरह शांति से दंगा, झगड़ा रोकने का काम जो कर सकेगा, वह होगा शान्ति-सैनिक। "मैं गाँव की सेवा करूँगा, अशान्ति न हो, ऐसा वातावरण तैयार करने की कोशिश करूँगा और यदि दंगा हुआ तो मैं बीच में पड़कर शान्ति रखने की कोशिश करूँगा, मार खाऊँगा, पर पीठ नहीं दिखाऊँगा" ऐसी हिम्मत देश में आयेगी, तभी जालिमों का जुल्म खत्म होगा।

आज तक इस प्रदेश में इस काम के लिए चार सौ भाई-बहनों ने नाम दिये हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि "हम सदा गाँव की सेवा करते रहेंगे, घर की तो करते ही हैं। उस सेवा के लिए कौड़ी नहीं माँगेंगे और मौका आया तो डरकर नहीं भागेंगे।' ऐसी हिम्मत करनेवालों की जमात और उसमें डेढ़ सौ बहनों का नाम देखकर हमारे साथी देखते ही रह गये। उन्हें अचरज हुआ कि आखिर बात क्या है? सभा में बहनें भी उठ-उठकर कह रही हैं कि हमारा नाम लिखिये, हमारा नाम लिखिये। हमारी कृष्णा बहन (सदस्य लोकसभा, दिल्ली) लिखते-लिखते थक जाती थी। ऐसी घटना सारे भारत में नहीं हुई थी। कृष्णा बहन कहने लगी कि यहाँ तो सैलाब आया है। आठ साल की पैदल यात्रा के बाद हम यहाँ पहुँचे हैं। आज तक दूसरे लोग सुनते थे कि बाबा आयेगा। अब उन्हें ऐसा जोश आया है कि वे नाम दे रहे हैं। अब सवाल इनकी तालीम का है। उनसे काम लेना होगा। सेवा का नक्शा उन्हें दिखाना होगा। ऐसी सेवा करें तो जम्मू में बढ़िया काम बन सकता है।

लड़कों को हमने यही समझाया है। मनुष्य इस शरीर को चोला समझेगा तो मौत से डरेगा नहीं। एक राक्षस की कहानी है। उसने एक मनुष्य को गुलाम बनाकर रखा था। जो भी खिदमत राक्षस कहता था, वह मनुष्य करता था। काँपते-काँपते, डरते-डरते काम करता था। जरा थक गया और बैठा तो राक्षस कहता था कि "तुम काम करते-करते थक गये तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा।" हमेशा यही सुनते-सुनते मनुष्य थक गया। आखिर उसने तय किया कि एक दिन मरना ही है तो इस राक्षस की धमकी क्यों सुनी जाय? इसलिए उसने तय किया और कह दिया एक दिन "खायेगा तो खा डालो।" जब यह सुना, तब राक्षस शान्त हो गया। क्योंकि राक्षस उसे खा जाता तो उसे नौकर नहीं मिलता। उसने मनुष्य से कहा : "देखो, तुम थक गये हो, जरा आराम कर लो।" मनुष्य समझ गया, राक्षस डरता है। मैं डरूँगा तो यह और भी डरायेगा। मैं डरूँगा तो यह जुलुम करेगा। जुलुम करनेवाला हावी हो जाता है। इसलिए मरने से क्यों डरा जाय?

यह शरीर तो कपड़ा है। जरूरत है तो पहन लिया, जरूरत नहीं है तो पटक दिया। इसलिए मारेगा तो मेरे कपड़े को मारेगा, मेरे जिस्म को मारेगा। कोई पर्वाह नहीं है, यह शरीर एक दिन मरनेवाला है ही। इसलिए मरने का डर छोड़े बगैर मनुष्य कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकता है। उसके बिना इन्सानियत टिक नहीं सकती हैं। बेडर, निडर, निर्भय बनना चाहिए। निडरता यह गुण सब गुणों में श्रेष्ठ है। देखो बच्चो, माँ-बाप भी तुम्हें मारेंगे-पीटेंगे तो कहो कि हम हर्गिज नहीं मानेंगे। आप हमें मारेंगे तो नहीं सुनेंगे। समझा दीजिये, समझाकर बताइये तो मानेंगे और बाबा का नाम बता दो। यहाँ आये हुए माता-पिताओं को भी मैं समझा रहा हूँ कि अगर आप बच्चों को मारेंगे-पीटेंगे तो उन्हें डरपोक बनायेंगे। बच्चे, डरपोकपन सीखेंगे। बुजदिल बनेंगे। कोई लड़का नियमित स्कूल में नहीं जाता है। मारने से वह वख्त पर स्कूल में जाने लगा। इसमें उसने कमाया नहीं है। क्योंकि जो शरीर को तंग करेगा, मारेगा, उसके वश होने की बात बच्चा सीखेगा। इसलिए माता-पिताओं को समझने की बात है। देश के बच्चे हिम्मतवाले, निर्भय, निडर बनने चाहिए। मौके पर जिस्म पटकने की तैयारी रहनी चाहिए। ऐसी हिम्मत होनी चाहिए। मारनेवाले पर गुस्सा न हो, यह भी उतना ही जरूरी है। इतनी ताकत आ जाय तो शांतिसेना बनेगी। ऐसी शांतिसेना बनेगी तो भारत में दंगा नहीं होगा और भारत की ताकत बढ़ेगी।

गलत रिवाज

आज सुबह कुछ लड़कियाँ मिलने आयी थीं। वे कहती थीं कि "आपने भूदान का काम शुरू किया है। अच्छा काम है, लेकिन हमपर जुलुम होता है। इधर जम्मू और कश्मीर में दहेज का रिवाज है। इससे हमें छुड़ाइये।" यह रिवाज बिलकुल गलत है। क्या लड़कों को बेचना है? जैसे बैल को बेचा जाता है। कहते हैं, हमने इसकी खिलाई-पिलाई अच्छी की है, ३०० रु० कीमत है। इसी तरह लड़कों के बाप कहते हैं कि हमने हमारे लड़कों को पढ़ाया है, उसमें इतना खर्च हुआ है। मैं इसे ५ हजार रुपये में बेचूँगा तो जैसे बैल को बेचते हैं, वैसे ही लड़कों को बेचने की बात है। सोचना चाहिए कि हर घर में बच्चे होते हैं। बच्चियाँ भी होती हैं। बच्चे की शादी में पैसा हाथ में आयेगा, जो बच्ची की शादी में जायगा। यह गलत रिवाज बंद होना चाहिए।

यह शांति-सेना और शरीर को कपड़ा समझने की, आत्मज्ञान की बात इतनी गम्भीर सभा में हमने की, उसमें कहने की नहीं थी। लेकिन सुबह लड़कियों को वचन दे दिया था, इसलिए कह दी। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

बोरसद (खेड़ा) २-११-'५८

आज की स्थिति में "सत्याग्रह" का स्वरूप क्या ?

"बोरसद" और "बारडोली" ये दो नाम भारत के सभी शिक्षित लोग जानते हैं। दोनों स्थानों पर सत्याग्रह हुए और दोनों का संबंध सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ है। हिन्दुस्तान में सत्याग्रह-शक्ति का जो विकास हुआ था, उसमें इन दो सत्याग्रहों का विशेष स्थान है। इसलिए भारत को इन दो नामों का स्मरण होता है।

आज की तीन विचारणीय घटनाएँ

स्वराज्य के बाद सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा, यह एक स्वतंत्र विचार का विषय है। वैसे ही लोकशाही में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा, यह भी दूसरा विषय है। स्वराज्य और लोकशाही में हम भेद मानते हैं। इसी तरह विज्ञान-युग में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होना चाहिए और हो सकता है, यह तीसरा विषय है। यों तो विज्ञान प्राचीन काल से आज तक चला आ रहा है। इसलिए किसी अमुक युग को विज्ञान-युग नहीं कहा जा सकता। फिर भी पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान में काफी प्रगति हुई। इसलिए इस युग को विज्ञान-युग कहा जायगा। उसमें भी इन दस वर्षों में विज्ञान की अत्यधिक प्रगति हुई, इसलिए इसे "अभिनव विज्ञान-युग" कह सकते हैं। अब इस अभिनव विज्ञान-युग में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा, यह भी विचारणीय विषय है। समझना चाहिए कि बारडोली, बोरसद के या दूसरे भी जो पुराने सत्याग्रह हुए, वे स्वराज्य के पहले के सत्याग्रह थे। वे ऐसे समय हुए, जब कि देश में लोकशाही नहीं थी और न अभिनव विज्ञान-युग ही शुरू हुआ था। आज स्वराज्य-प्राप्ति, लोकशाही की स्थापना और अभिनव विज्ञानयुग का आरंभ ये तीन नयी घटनाएँ बनी हैं, जिनपर हमें सोचना होगा।

अभिनव विज्ञान-युग का सन्देश : "पुराना मन छोड़ो"

उन घटनाओं में आखिरी घटना—अभिनव विज्ञानयुग का आरंभ—ऐसी है, जो सारी दुनिया के समाजों और मानसों के स्वरूपों में ही फर्क कर देगी। इस आणविक युग में मनुष्य का मन बदल जाने पर ही वह टिकेगा, अन्यथा सारी मानव-जाति नष्ट होगी। ऐसी समस्या इस अभिनव विज्ञान-युग ने खड़ी कर दी है। अभिनव विज्ञान-युग मानव से कहता है कि तुम अपने मन को, जो कि अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है, फेंक दो और नये मन को स्वीकार कर नयी दृष्टि से सोचने लगो। पुराना मन और पुरानी दृष्टि कायम रखोगे तो समूल विनाश का रास्ता पकड़ोगे। इसलिए अब बहुत सूक्ष्म विचार करने की जरूरत है। जैसे-जैसे मैं इस विज्ञानयुग के बारे में सोचता हूँ, मुझे आश्चर्य ही मालूम होता है।

आत्मज्ञान और विज्ञान के ऐकमत्य पर ध्यान दें

यों आत्मज्ञान तो इस देश और दूसरे देशों में भी प्राचीन काल से ही विकसित है किन्तु इस देश में विशेष रूप से विकसित हुआ है। आत्मज्ञान और नया विज्ञान, दोनों का उपर्युक्त विषय में एक ही मत है। दोनों कहते हैं कि "मैं मेरा, तू तेरा" यह जो भेद हमने बनाया है, वह अब टिक नहीं सकता। यदि वह टिकेगा तो हम ही नहीं टिक सकते। आत्मज्ञान ममता और अहंता पर जितना तीव्र प्रहार करता था, उससे अधिक तीव्र प्रहार अब विज्ञान कर रहा है। इसलिए अब समाज का जीवन बदलेगा और बदलना ही पड़ेगा। अभी हम इस दृष्टि से नहीं सोचते कि आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों जिस विचार पर सहमत हैं, उसे ठीक से समझकर उसके अनुसार अपना जीवन बदलना चाहिए। इसीलिए आज सारे सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन और हलचलें, पुरानी दृष्टि से चल रही हैं और इसीलिए एक समाज के साथ दूसरे समाज का तथा एक राष्ट्र के साथ दूसरे राष्ट्र का संघर्ष हो रहा है।

भारत याने एक छोटा-सा जगत

भारत का यह विशेष सौभाग्य है कि वह एक विविध रंगों का देश है, जिसमें अनेक जातियाँ, पंथ, रीति-रिवाज और अनेक उपासनाएँ हैं। हमें उसके योग्य बनना है। सारी दुनिया के मसले कैसे और किस पद्धति से हल किये जा सकते हैं, इसका प्रयोग भारत कर सकता है। कारण भारत याने सारी दुनिया का एक छोटा-सा रूप ही है। जो प्रयोग भारत में सफल होगा, वह प्रयोग सारी दुनिया में किया जा सकता है। इसलिए भारत याने एक छोटा जगत ही है, यह ध्यान में रखकर हमें काम करना चाहिए। अभी हमारी यात्रा में कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में "जय जगत" का उद्घोष शुरू हुआ है। इस मंत्र को स्वीकार करने में यहाँके लोगों को जरा भी मुश्किल नहीं मालूम हुई। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि इस मंत्र का पुराने मंत्र के साथ कोई विरोध है। लोगों ने सहज ही उसे उठा लिया। इस हालत में हम अपनी समस्याएँ जिस तरीके से हल करेंगे, उसका असर सारी दुनिया पर होगा। अगर हमारा तरीका अच्छा हो तो सारी दुनिया उसका अनुकरण कर सकती है।

करुणामूलक राज्यस्थापना का यह प्रकार वैज्ञानिक

हमारी यात्रा में पिछले ७-८ वर्षों से दुनिया के बहुत सारे देशों के सैकड़ों व्यक्ति आ रहे हैं। उन्हें हमारे इस भूदान-ग्रामदान के प्रयोग का आकर्षण इसीलिए होता है कि वह करुणा पर आधारित है, कानूनी शक्ति या हिंसाशक्ति पर नहीं है। करुणा से जो साम्य पैदा होता है, वही मानव को समाधान देता है। मात्सर्य और स्पर्धामूलक साम्य तो आज से भी अधिक वैषम्य पैदा करता है। मुझे लोग सुनाते हैं कि इस प्रयोग ने दुनिया का जितना ध्यान खींचा है, उतना दूसरे किसीने नहीं। इसका भी कारण यही है कि जो तरीका हमने अख्तियार किया है कि करुणा द्वारा करुणामूलक साम्य की स्थापना हो, वह वैज्ञानिक है याने विज्ञान के अनुकूल है।

सत्याग्रह का पुराना रूप चल नहीं सकता

मनुष्य का मन व्यक्तिगत होता है और बुद्धि सामाजिक, क्योंकि वह समाज में विकसित होती है और मनुष्य को सहज मिलती है। इसलिए मानव व्यक्तिगत मन का आग्रह छोड़कर सामूहिक बुद्धि का आश्रय लेगा, तभी इस विज्ञान-युग में मन के साथ मन की टक्कर नहीं होगी। जिस मार्ग या पद्धति से मनों

की टक्कर होती है, वह विज्ञान-युग में उचित नहीं। इस युग में जो भी संघर्ष होगा, वह बड़ा भयानक रूप लेगा, क्योंकि आज ऐसे शस्त्रास्त्र पैदा हुए हैं, जिन्हें मानव पकड़ नहीं सकता, बल्कि वही उनकी पकड़ में आ जाता है। हिंसा में पहले जो रक्षण-शक्ति थी, वह अब इन शस्त्रास्त्रों के पैदा होने के बाद नहीं रही है और अब वह नग्न रूप में प्रकट हुई है। इस हालत में सत्याग्रह का पुराना स्वरूप नहीं चल सकता।

"सत्याग्रह" सुनते ही खुशी हो

अब सत्याग्रह करुणामूलक ही होना चाहिए। सामनेवाले के बारे में हमारे मन में द्वेष न होना ही काफी नहीं। अब तो यह भी जरूरी है कि उसके लिए हमारे मन में प्रेम और करुणा हो। हमारी कृति से करुणा फैलनी चाहिए। इस युग में सत्याग्रह का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए कि "सत्याग्रह" शब्द सुनने-मात्र से सबको खुशी महसूस हो। सत्याग्रह की यही कसौटी होगी। जैसे किसीका वात्सल्य सुनते ही सबको खुशी होती है, वैसे ही किसी जगह सत्याग्रह शुरू होने की बात सुनते ही सबको आनन्द, तुष्टि और शान्ति महसूस होनी चाहिए। उसके बदले दूसरों को यह लगे कि "पता नहीं इस सत्याग्रह में क्या है, इसे टाला जाय तो अच्छा है" तो वह सत्याग्रह नहीं है। सारांश, सत्याग्रह का स्वरूप ऐसा हो कि आरम्भ होते ही तत्-क्षण वह स्वागतार्ह, स्वीकारार्ह, आदरणीय मालूम होना चाहिए।

गांधीयुग के सत्याग्रह का रूप आज न चलेगा

गांधीजी के जमाने में इस प्रकार के सत्याग्रह का विकास नहीं हुआ। गांधीजी हमेशा कहते थे कि "सत्याग्रह नित्य विकसनशील शास्त्र है, उसका शास्त्र हम अभी नहीं बना सकते, वह धीरे-धीरे बनेगा।" गांधीजी क्रांतदर्शी थे। जिस जमाने में वे काम करते थे, उस जमाने की मर्यादाएँ जानते थे और क्या आनेवाला है, उसका भविष्य भी देखते थे। इसलिए वे आग्रह-पूर्वक कहा करते थे कि "गांधीवाद जैसा कोई शब्द नहीं चलना चाहिए।" यह शब्द घातक है, क्योंकि गांधीजी के नाम के साथ सत्याग्रह का संबंध जोड़ दिया जाय तो हमें जितनी प्रेरणा मिलेगी, उसके साथ-साथ सत्याग्रह में मर्यादा भी आ जायगी। "गांधीवाद" शब्द सत्याग्रह को मर्यादित करता है। इसलिए वह शब्द "सत्याग्रह" के साथ न जोड़ा जाय। किन्तु "गांधी" कोई व्यक्ति का चरित्र था, ऐसा हम न समझें, बल्कि एक विचार था, यही समझें। तभी उससे सत्याग्रह-शास्त्र का विकास करने में बहुत मदद मिलेगी। मैं कहना यह चाहता हूँ कि इस जमाने में सत्याग्रह का स्वरूप वह नहीं हो सकता, जो गांधीजी के जमाने में था। क्योंकि वह सत्याग्रह स्वराज्य के पहले का था और अब स्वराज्य आ चुका है। वह सत्याग्रह उस जमाने का था, जब लोकशाही नहीं थी और अभिनव विज्ञान-युग भी नहीं था, जो आज है। स्वराज्य, लोकशाही और अभिनव विज्ञान—ये तीन ऐसी घटनाएँ हैं, जो हमें सत्याग्रह का संशोधन करने की प्रेरणा देती हैं।

नित्य का जीवन ही सत्याग्रही हो

हमें समझना चाहिए कि सत्याग्रह एक नैमित्तिक वस्तु नहीं, नित्य वस्तु है। इसलिए वह प्रतिक्षण चलना चाहिए। मैं जो चीज कह रहा हूँ, वह बापू ने कहीं थी, भले ही उनकी भाषा इससे कुछ भिन्न हो। सत्याग्रह जीवन की निष्ठा है। क्या मनुष्य एक क्षण में मरता है? वह तो प्रतिक्षण मरता है। प्रतिक्षण मरते-मरते एक क्षण पूरा मरता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सात सालों में इन्सान में खून का एक भी पुराना बूँद नहीं बचता। सारा पुराना खून खत्म हो जाता है और नया पैदा होता है। हमारे पुराने लोग मानते थे कि इन्सान में बारह साल में पूरा परिवर्तन हो जाता है। बारह साल पहले के और बाद के व्यक्ति का नाम भले ही एक हो, किन्तु रूप, गुण, स्वभाव आदि में परिवर्तन हो ही जाता है। यही कारण है कि उन्होंने चार आश्रम आदि नाटक या एक ही जीवन-नाटक के अनेक अंक बनाये। इसीलिए इस देह से पाप हुआ तो प्रायश्चित्त के लिए बारह साल तप करने के लिए कहा जाता था। दोनों का मतलब यही है कि मनुष्य प्रतिक्षण बदलता है। इसे ध्यान में रखकर हमें समझना चाहिए कि हमारा नित्य का जीवन ही सत्याग्रह का हो।

यह सारा काल्पनिक आरंभ

इसके बदले इन दिनों कहा जाता है कि "अमुक तारीख से सत्याग्रह शुरू होनेवाला है।" किन्तु "शुरू होनेवाला है" इसका अर्थ क्या है? उस तारीख से पहले क्या था? क्या छह बजे सूर्योदय होनेवाला हो तो उसके पहले अन्धेरा और उसी क्षण उजाला हो जाता है? सत्याग्रह आज न चल रहा हो तो उस दिन कैसे चलेगा? कुछ लोग कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति को अमुक दिन ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। ऐसे कुछ ईश्वर-साक्षात्कारी व्यक्तियों से मैं भी मिला हूँ। मैंने उनसे पूछा कि "जिस दिन ईश्वर-साक्षात्कार हुआ, तबसे वह कायम है या बन्द हो गया? अगर आज तक कायम है तो बताइये कि एक क्षण में साक्षात्कार कैसे हुआ? क्या उसके पहले क्षण में वह नहीं था?" कई लोग कहते हैं कि "दस लाख साल पहले इन्सान पैदा हुआ।" मैं उनसे पूछता हूँ कि "दस लाख साल पहले जो मानव था, उसका बाप कौन था? वह मनुष्य था या नहीं? फिर, बाप से इन्सान शुरू हुआ या बेटे से? अगर बाप से शुरू हुआ तो उसका बाप कौन था?" इसलिए यह सारा काल्पनिक आरम्भ है। ईश्वर-साक्षात्कार कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि एक क्षण में हो जाय। वह तो प्रतिक्षण विकसित होता है। सारी इन्द्रियाँ, मन आदि विकसित होते-होते चैतन्य-ज्योति का आविर्भाव होता रहता है। इसलिए जब यह कहा जाता है कि अमुक का अमुक समय में समाधान हुआ तो उसका अर्थ यही है कि उसे "मानसिक समाधान" हुआ, वह कोई ईश्वर-साक्षात्कार नहीं। जैसे ईश्वर-साक्षात्कार किसी अमुक दिन, अमुक क्षण नहीं होता, वैसे ही सत्याग्रही का प्रतिक्षण का जीवन ही सत्याग्रह होता है।

सत्याग्रह और लड़ाई, दोनों सर्वथा भिन्न

सत्याग्रही की कोई भी कृति सुनने पर सुननेवाले को उससे ठंडक और शीतलता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु इन दिनों कहीं सत्याग्रह का आरम्भ सुनते ही भय मालूम होता है, घबड़ाहट पैदा होती है और उसके प्रतीकार का भी विचार चलता है। कुछ लोग कहते हैं कि "सत्याग्रह लड़ाई का पर्याय है, जो लड़ाई के बदले किया जाता है। इसलिए वह एक किस्म की लड़ाई ही है।" किन्तु वास्तव में सत्याग्रह का स्वरूप लड़ाई से बिलकुल ही विपरीत है। लड़ाई में एक पक्ष की विजय होती है तो सत्याग्रह में दोनों पक्षों की। लड़ाई में एक-दूसरे के मन मिलते नहीं तो सत्याग्रह में मिलते हैं। जहाँ सत्याग्रह में बुद्धि के ऊपर का पर्दा हट

जाता है और वह विचार करने के लिए मुक्त हो जाती है, वहीं लड़ाई में बुद्धि कुंठित हो जाती है। आखिर सत्याग्रह तो तब सफल होता है, जब सामनेवाले का मन विचार करने के लिए तैयार हो। मेरी कोई कृति, युक्ति, विचार या संकल्प के कारण तुम्हारी बुद्धि विचार करने लग जाय तो मेरा सत्याग्रह सफल हुआ, यह समझा जाय।

ज्ञान और विचारशक्ति पर विश्वास ही 'सत्याग्रह'

इसलिए शंकराचार्य जो कहते थे, वही सत्याग्रही की प्रतिज्ञा है। जब उनसे पूछा गया कि "मान लीजिये, आपने एक बार किसीको अपनी बात समझा दी और वह न समझा तो आप क्या करेंगे?" उन्होंने जवाब दिया कि "दुबारा समझाऊँगा। दो बार समझाने पर भी कोई न समझे तो तीसरी बार समझाऊँगा।" इसी तरह जब ईसामसीह से पूछा गया कि मनुष्य को कितनी बार क्षमा करनी चाहिए तो उसने कहा—"सात बार।" फिर पूछा गया कि "सात बार क्षमा करने पर भी कोई द्वेष न छोड़े तो क्या करना चाहिए?" इसपर ईसा ने कहा "तो ७×७=४९ बार क्षमा करनी चाहिए और उससे भी काम न हो तो ७×७×७=३४३ बार क्षमा करनी चाहिए।" एक बार एक कीर्तनकार भागवत की कथा सुनाते हुए १७ युग के पितरों की बात कर रहा था। किसीने पूछा कि "१७ युग के पितर कौन थे?" तो उसने जवाब दिया—"१८ वाँ युग।" सारांश यह कि शंकराचार्य ने यह कहा कि "मैं तो समझाता ही रहूँगा, मेरा यही काम है।" ज्ञानशक्ति और विचारशक्ति पर यह विश्वास ही "सत्याग्रह" है।

सत्याग्रह-शक्ति तितिक्षा नहीं

मान लीजिये, मुझे लगता है कि मेरे पक्ष में सत्य है, किन्तु सामनेवाला उसे नहीं मानता। इसलिए मैं अनशन शुरू कर देता हूँ और वह भी अनशन आरम्भ कर देता है। अब इसका निर्णय किस रीति से होगा? अगर मुझमें अनशन करने की ताकत है और सामनेवाले में अधिक है तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि उसके पक्ष में सत्य है? अगर अनशन करने की शक्ति से ही सत्य का निर्णय करना हो तो फिर कुश्ती से ही वह क्यों न कर लिया जाय? जैनियों को उपवास की इतनी आदत होती है कि किसी जैनी के सामने उपवास करना पड़े तो मैं तो हैरान ही हो जाऊँगा। मैं उसके सामने टिक न सकूँगा। तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि उसके पक्ष में सत्य है? फिर तो "तितिक्षावान् सत्यान्" यही अर्थ होगा। लेकिन जैसे यह खयाल गलत है कि जिसके पास अधिक शस्त्रास्त्र हैं, उसके पास सत्य है, वैसे ही यह खयाल भी गलत है कि जिसके पास तितिक्षा है, उसके पास सत्य है। सत्याग्रह-शक्ति तितिक्षा नहीं। यद्यपि यह सच है कि सत्याग्रह में बहुत सहन करना पड़ता है, फिर भी सहन करना या उपवास की शक्ति, यह कोई सत्याग्रह का लक्षण नहीं। सहन करना पड़ता है, इसलिए सहन करें, यह ठीक ही है। किन्तु सहन करने का कोई कार्यक्रम सत्य स्थापित करने का कार्यक्रम नहीं हो सकता। सत्य स्थापित करने के लिए "विचार" के सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है। आप मुझे विचार समझाएँ, मैं आपको विचार समझाऊँ, इसके सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है, जो सत्य की स्थापना कर सके। विज्ञान-युग में यह चीज समझनी होगी और धीरज के साथ अपना विचार समाज को समझाना होगा। अगर एक रीति से समझाने से समाज न समझे तो दूसरी रीति से समझाना होगा, अधिक कुशलता से समझाना होगा। यही सत्याग्रह का शुद्धतम स्वरूप है।

हवा बनने पर काम एकदम बन आता है

इसी रीति से विचार समझाते हुए ७-८ साल से मैं घूम रहा हूँ। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि आप कहाँ तक यह काम करोगे, इसमें कितना समय लगेगा? मैं जवाब देता हूँ "भाई, यह कोई गणित का सवाल नहीं है। सात साल में इतने लोग समझे तो सारा समाज कितने साल में समझेगा।" आम पकना आरम्भ हो जाता है तो सारे आम एक साथ पकते हैं। इसी तरह विचार की हवा फैलने पर फिर हवा ही काम करती है। इतिहास में दिखाई देता है कि दो हजार साल पहले दुनिया में सर्वत्र धर्म-स्थापना का कार्य आरम्भ हुआ। कनफ्यूसिअस, लाओत्से, जरथुस्त, मूसा, बुद्ध, महावीर, ईसा आदि धर्मसंस्थापक पाँच-सात सौ साल के भीतर ही दुनिया में यत्र-तत्र सर्वत्र पैदा हुए। उस जमाने में आज जैसे आवागमन के त्वरित साधन नहीं थे। आज तो जापान और अमेरिका पड़ोसी देश बने हैं। दोनों के बीच सिर्फ १०-१२ हजार मील का एक छोटा-सा प्रशांत सागर है। एक जमाने में जो सागर दोनों को तोड़ता था, वही आज दोनों को जोड़ता है। इस हालत में, जब कि दुनिया का स्वरूप ही बदल रहा है, हमें सोचना चाहिए और विचार समझाने में धीरज रखना चाहिए।

हम धैर्य रखकर विचार का सतत प्रचार करें

हमें समझना चाहिए कि पुराने जमाने में भी, जब कि दुनिया को जोड़नेवाले साधन मौजूद नहीं थे, यहाँ-वहाँ धर्म-संस्थापक पैदा हुए, क्योंकि परमेश्वर के संकल्प से सारी दुनिया में एक हवा फैलती है। वेदों में कहा है कि परमेश्वर के संकल्प से मरुद्गण दुनिया में बहते हैं। एक जमाने में सर्वत्र धर्म-संस्थापना का कार्य हुआ तो मध्ययुग में सर्वत्र संत पैदा हुए। भारत, एशिया और यूरोप में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई संत पैदा हुए। उपासना का विचार, ध्यान-धारणा आदि प्रक्रियाएँ सारी दुनिया में चलीं। उसके बाद इन दो सौ वर्षों में हम देख रहे हैं कि सर्वत्र स्वतंत्रता के आन्दोलन हुए। इस तरह सारी दुनिया में हवा बहती है। इसलिए हम अगर धीरज रखें और सच्चे विचार का सातत्य-पूर्वक प्रचार और आचार करते रहें तो वह विचार हवा से ही फैलेगा। इस विज्ञानयुग में इसके सिवा कोई दूसरे साधन हम इस्तेमाल करेंगे तो सत्याग्रहशक्ति की खोज नहीं होगी, बल्कि सत्याग्रह का विपरीत अर्थ चलेगा।

मैं सचमुच "सातत्यकारी"

अभी एक भाई ने मुझे एक किताब दी। उसमें एक कविता में मेरे कुछ गुण बताये हैं। मैंने उनसे कहा कि "आपके लिखे हुए दूसरे गुण मुझे बिलकुल लागू नहीं होते, यद्यपि मैं उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता हूँ। किन्तु उनमें से "सातत्यकारी" यही विशेषण मुझे ठीक लागू होता है। मुझमें सत्याग्रह-निष्ठा काम करती है, जो कहती है कि सत्याग्रह याने सातत्य। जो थोड़ी देर के लिए चलता है, वह सत्याग्रह नहीं। सत्याग्रह तो निरंतर चलता है। एक चीज मेरे ध्यान में आयी है कि जमीन की मालकियत नहीं रहनी चाहिए तो अब या तो वह काम पूरा होगा या मैं ही पूरा हो जाऊँगा। दो के सिवा कोई तीसरी गति नहीं है। क्योंकि मैं जिस तरह सत्य को समझा हूँ, उसीपर चलता रहूँगा, जब तक कि कोई मुझे यह न समझाये कि जिसे मैं सत्य समझता हूँ, वह सत्य नहीं है। इसीको मैं सत्याग्रह का उत्तम स्वरूप मानता हूँ।

मनुस्मृति में ब्राह्मण को आज्ञा दी गयी है :

"जप्येनैव तु संसिद्धि: ब्राह्मणो नात्र संशय:।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् ॥"

ब्राह्मण दूसरा कुछ कर सके या न भी कर सके, पर उसे केवल जप करना चाहिए। केवल जप से ही उसका काम हो जायगा। शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि "मंत्रो ब्राह्मण उच्यते" याने मंत्र ही ब्राह्मण है। सतत मंत्र-जप करे, माला लेकर नहीं, जीवन में सतत मंत्रजप चले। उसीका ध्यान चले और वही काम चले। इस तरह मनुष्य ध्यान, धारणा, समाधिपूर्वक सत्य पर सातत्य-पूर्वक चले तो उसका आविर्भाव होता ही है। गीता के आठवें अध्याय में सातत्य-योग पर कहा है :

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन: ॥

जो मनुष्य अनन्यनिष्ठा से नित्य निरंतर परमेश्वर का स्मरण करेगा, उसके लिए मैं सहज प्राप्त हूँ। इससे बढ़कर सरल-सहज मार्ग दूसरा कोई नहीं हो सकता।

उचित विचार के आचरण में देर क्यों ?

सत्याग्रह याने विचार-प्रवर्तन का काम सतत करते रहना। जो विचार खुद समझे हों और जिसका उसी क्षण पर आचरण आरंभ कर दिया हो, उसका प्रवर्तन ही सत्याग्रह है। आचरण में और विचार में विरोध नहीं होना चाहिए। मैं यह नहीं समझ सकता कि फलाना विचार उचित है। यह मालूम होने पर उस पर आचरण करने में देर क्यों हो ? अगर मुझे खबर मिले कि मेरे बिछौने पर साँप है तो वह बिछौना छोड़ने में मुझे देर क्यों लगेगी ? मेरी विचार पर अत्यन्त निष्ठा है। कोई विचार समझ में आया तो उसी क्षण उसपर आचरण करता हूँ। विचार पूरा समझ में न आये तो आचरण नहीं होता। इसलिए मेरा विश्वास है कि मेरा विचार आपकी समझ में आयेगा तो जो प्रेरणा मुझे मिली है, वह आपको मिले बगैर नहीं रहेगी। फिर जैसे उसने मेरे पाँवों में गति दी है, वैसे वह आपके पाँवों में भी देगा, आप बैठ नहीं सकेंगे।

मुझे काम की कोई चिन्ता नहीं

जब लोग मुझसे पूछते हैं कि "क्या आपकी कोई संस्था या व्यक्ति है, जिसके जरिये आपका काम होगा ?" तो मैं जवाब देता हूँ कि "तुम ही मेरे साथी हो। जो विचार मैं तुम्हें समझा रहा हूँ, वही मेरी सर्वश्रेष्ठ संस्था है, उस विचार को आप समझें, इससे बढ़कर दूसरी कोई संस्था या संगठन नहीं।" इन सात सालों में बगैर कोई संगठन खड़ा किये लाखों एकड़ जमीन मिली और उसका बँटवारा भी हुआ। रात को सोते समय मुझे नींद आने में दो मिनट की भी देरी नहीं लगती है। क्योंकि मुझपर कोई बोझ नहीं, सारा बोझ उसीपर है। इस आंदोलन का क्या होगा, इसका परिणाम क्या आयेगा, आज कितना दान मिला—इन सबकी मुझे कोई परवाह नहीं है। वह सब भगवान ही जाने। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं खुद उस काम में तन्मय हूँ या नहीं, मैं काया, वाचा और मन से इसमें लगा हूँ या नहीं। अगर मैं इसमें लगा हूँ तो जो सत्य है, उसका प्रकाश फैलेगा ही। इसलिए मुझे इस काम की कोई चिन्ता नहीं है।

यह सत्याग्रह का नव-संशोधन

अभी जबसे मैं गुजरात आया हूँ, कुछ भाइयों ने पत्रक निकाले हैं कि "भूदान तो ठीक था, किन्तु ग्रामदान भयंकर आंदोलन है।" मैं उन्हें समझाता हूँ कि "भाई, अगर आपको ग्रामदान में भय मालूम होता हो तो मुझे ऐसे ग्रामदान की बिलकुल जरूरत नहीं। किन्तु आपको इसमें निर्भयता मालूम हो और यह महसूस हो कि ग्रामदान के बगैर ग्राम अत्यन्त भयग्रस्त हैं, तभी आप शांतिपूर्वक ग्रामदान कीजिये, अन्यथा कभी मत कीजिये।" मुझे धीरज है। मैं मानता हूँ कि यह विचार अत्यन्त सत्य है। जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी मानवमात्र के के लिए है, वैसे जमीन भी मानवमात्र के लिए है। उसपर मालकियत अन्याय है, असत्य है, अधर्म है। इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। इसलिए इस असत्य, अधर्म और अन्याय के विरुद्ध मेरा यह सत्याग्रह चल रहा है। मुझे उम्मीद है कि सारी दुनिया देख रही है कि यहाँ सत्याग्रह का नया संशोधन चल रहा है।

शांतिसैनिकों की माँग

बोरसद का नाम भारत सत्याग्रह के कारण ही जानता है। इसीलिए मैंने आज यहाँ सत्याग्रह की थोड़ी मीमांसा की। मैं चाहता हूँ कि खेड़ा जैसे जिले से विचारशक्ति पर विश्वास रखनेवाले, सतत काम कर आचरणपूर्वक, नम्रता, अनाग्रह से लोगों के सामने विचार रखनेवाले सैकड़ों सेवक निकलें। ऐसे सेवकों को मैंने "शांति-सैनिक" नाम दिया है। ये सेवक सेवा का काम करेंगे तो फिर भारत में शांति स्थापित होगी और उसके परिणामस्वरूप कम से कम भारत में आन्तरिक शांति का कार्य पुलिस और सेना को न करना पड़ेगा। फिर उसका नैतिक असर सरकार पर होगा और सारी दुनिया पर भी उसका परिणाम होगा। फिर दुनिया के सामने एक राह खुल जायगी कि किस तरह सारी दुनिया में शांति की शक्ति से काम हो सके।

खेड़ा जिले से विशेष आशा

मैं आशा करता हूँ कि जहाँसे गांधीजी के सत्याग्रह का संदेश सारी दुनिया में फैला, वह खेड़ा जिला यह काम कर सकता है। जबसे मैं इस जिले में आया हूँ, सत्याग्रह और शांतिसेना के ही बारे में कहता हूँ। इसी आशा से कि सरदार और गांधीजी के इस जिले में, जहाँ सत्याग्रह का महान प्रयोग हुआ, जिसकी कहानियाँ लोगों में प्रचलित हैं, वहाँ यह नयी शक्ति जागृत होगी तो काम हो जायगा।

संपन्नता इस विचार की पोषक ही, शोषक नहीं

कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि तुम्हारा ग्रामदान का काम तो जंगलों में होगा। किन्तु यह खेड़ा जिला है, जहाँकी जमीन धान्य पैदा करती है। यहाँके लोग सुखी हैं तो फिर यहाँ आपका सन्देश कौन सुनेगा ? दु:खी लोग ही आपका सन्देश सुनेंगे। मैं उनसे कहता हूँ कि मेरा मानना है कि मेरा विचार सुनने के लिए दु:खी लोगों की अपेक्षा सुखी लोग ही ज्यादा लायक हैं, क्योंकि सुखी लोग मेरे विचार लाचार और व्याकुल होकर नहीं, बल्कि स्वस्थ मन से स्वीकार करेंगे। मैं चाहता भी यही हूँ कि लोग स्वस्थ मन से सोच-विचारकर इसे स्वीकार करें। इसीलिए मुझे खुशी है कि यहाँ लोग सुखी हैं तो वे मेरा विचार जरूर सुनेंगे। कल अगर मैं इंग्लैण्ड जाऊँ और वहाँ अपना विचार रखूँ तो वहाँ यहाँसे भी अधिक कार्य होगा, क्योंकि उन लोगों के सामने अपने दु:ख का सवाल नहीं है। वे सुखी हैं, इसलिए उनमें विचार समझने की शक्ति है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि इस जिले के लोग मेरा विचार सुनने के ज्यादा हकदार हैं।

●●●

प्रार्थना-प्रवचन

रजुवाड़िया (भरुच) ७-११-'५८

ग्रामदान के साथ विकास की योजना

यह सारा प्रदेश मेरे लिए बिलकुल नया है। इसलिए रास्ते में निरीक्षण करते-करते चिन्तन भी करता हूँ।

ये अनाज के षड्रिपु

यहाँकी जमीन तो हिन्दुस्तान की सर्वसाधारण जमीन जैसी ही है। मैंने देखा, जमीन का ज्यादा हिस्सा कपास और मूंगफली में ही जाता है। मूंगफली खाने की चीज है। उसमें बहुत सारा प्रोटीन है। एक पौष्टिक खुराक है और कपास के बिना तो काम ही नहीं चलता। फिर भी इन दोनों फसलों का उद्देश्य पैसा प्राप्त करना ही है। इसलिए किसान उन्हें बोता है। मैं तो कपास, मूंगफली, तम्बाकू, हल्दी, जूट और गन्ना, इन्हें अनाज के षड्रिपु कहता हूँ। अलग-अलग प्रान्तों में मैंने देखा कि इन्हीं छह चीजों की फसलों का ज्यादा प्रचार है। इससे अनाज भी कम पड़ने लगता है। और लोग बहुत दरिद्री हो जाते हैं।

अब गल्ले और गन्ने के बीच झगड़ा

फिर गाँव में उद्योग-धंधे भी नहीं रहते। अगर गाँव में गुड़ होता तो गाँव के लोगों को धंधा मिलता और पौष्टिक खुराक भी मिलता। किन्तु गुड़ बनाने का काम मिलें कर रही हैं। गाँव में गुड़ बनता था तो गन्ने का कड़बा किसान के बैलों को मिलता था। किन्तु अब न बैल को खाने के लिए कड़बा मिलता है और न किसान को इंधन। मिलवाले बड़े-बड़े फार्म बनाते हैं, जिसमें गन्ना बोया जाता है। जितना गन्ना चाहिए, उतना उन्हें अपनी मालकियत के खेत से मिलता है। इस तरह पाँच-पाँच, दस-दस एकड़ की खेती बनाकर काफी शोषण चलता है। आगे चलकर उसका प्रान्त के अनाज की फसल पर भी असर होता है। एक दिन मैंने कहा भी कि "अबतक उत्तर प्रदेश में उन दो कामों के बीच दंगे होते थे। लेकिन अब वहाँ दंगे या लड़ाई गल्ला और गन्ना के बीच होगी।"

परावलंबिता से ही यह शोचनीय स्थिति

जगह-जगह अच्छी-से-अच्छी जमीन में इसी तरह की फसलें बोयी जा रही हैं। गुजरात के खेड़ा जिले की जमीन कृष्णा, गोदावरी, कावेरी के किनारे की जमीन अच्छी-से-अच्छी मानी जाती है, जहाँ तम्बाकू बोयी जाती है। उसमें किसानों को क्या दोष दिया जाय, जबकि सारे गाँव ही परावलंबी हो गये हैं। उन्हें कपड़ा, शक्कर आदि भी चीजें बाहर से खरीदनी पड़ती हैं। घर में धान होता है, पर वे मिल में जाकर चावल बनाकर लाते हैं। बहुत ही परावलंबी जीवन हो गया है। यह सब करने के लिए पैसा चाहिए। पुराने जमाने में इस तरह पैसे की जरूरत नहीं थी, क्योंकि इसका जवाब ग्रामोद्योग से मिलता था। किन्तु आज ग्रामोद्योग नहीं रहे, इसलिए पैसा चाहिए और पैसे के लिए ऐसी फसल बोयी जाती है। फलस्वरूप आज हमारी भारत सरकार को सौ करोड़ रुपयों का अनाज बाहर से मँगाना पड़ता है। भारत जैसे कृषिप्रधान देश में स्वातंत्र्य मिलने के बाद भी अन्न के विषय में पराधीनता सचमुच सोचने की बात है।

गुणों का विकास आवश्यक

हमारी सरकार का तीन सौ करोड़ रुपया सेना पर खर्च होता है, दो सौ करोड़ रुपया राज्य-कारोबार पर और सौ करोड़ रुपया बाहर से अनाज लाने पर खर्च होता है। वह सारा खर्च बाद करें तो गरीबों की सेवा के लिए बहुत ही कम पैसा बचता है। हम मानते हैं कि सारा सरकार को ही करना है, लेकिन कोई भी सरकार जनता के बिना टिक नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि अगर प्रजा निर्भय न रहे और उसमें गुणों का विकास न हो तो सरकार को रक्षार्थ सेना पर खर्च करना ही होगा। इसके लिए देश में निर्भयता आनी चाहिए, केवल सेना के रक्षण से नहीं होगा। इसी तरह दया गुण न हो और जगह-जगह अस्पताल हों तो क्या लाभ? इसी तरह जगह-जगह कालेज, युनिवर्सिटी हो और ज्ञान की तृष्णा न बढ़े, पैसा देकर डिग्रियाँ ली जायँ और बाद में विद्याभ्यास का व्यासंग न रहे तो उन्नति न होगी। इसलिए अध्ययन की प्रीति भी होनी चाहिए। अध्ययन की प्रीति यह एक गुण है। अध्ययन के बदले हजारों स्कूल चलें तो भी देश का उद्धार न होगा।

सब कुछ सरकार करेगी तो हम परावलम्बी बनेंगे

सब कुछ सरकार ही करे, इस तरह हमें कभी नहीं सोचना चाहिए। अगर सरकार ही सब करेगी तो हम परावलम्बी बनेंगे। सरकार सारा काम अच्छा ही करेगी, ऐसा भी नहीं कह सकते। सरकार काम करेगी तो स्थिति बिगड़ भी सकती है। इसलिए गाँव-गाँव में लोग अपना-अपना कारोबार करें। अपनी बुद्धि से काम करें। उसमें कोई दोष हो तो बदल भी सकते हैं। जब हम एक-दूसरे का अनुभव देखकर चलेंगे तो हमारा विकास होगा। सरकार करेगी तो विकास होगा, यह भावना गलत है। सरकार के काम करने से सुख मिलने पर भी जनता का विकास न होगा। लोग परावलम्बी बनेंगे, आलसी बने रहेंगे, उनमें जागृति नहीं आयेगी। अमेरिका की स्थिति देखिये। वहाँ हर मनुष्य के पीछे १२ एकड़ जमीन है। दुनिया का आधा सोना वहाँ है। वहाँ विज्ञान है, यन्त्र है, साहित्य है। किसी तरह की कमी नहीं। फिर भी वहाँ आत्महत्याएँ होती हैं, जितने पागलपन के प्रकार होते हैं, उतने शायद ही दूसरे देशों में होते हों। यहाँ जैसा दारिद्र्य वहाँ नहीं है तो भी वहाँके युवकों के हृदय में स्थिरता नहीं दीखती है। इसलिए गाँववाले अपने पाँवों पर खड़े हों। हमारी यह भूमि आध्यात्मिक है। यही हमारा आधार है। इसपर हमें काम करना चाहिए। गाँववालों को यह तय करना चाहिए कि हम अपनी सम्मति से गाँव की योजना करेंगे, तभी गाँव में आध्यात्मिकता आयेगी और गाँव सुखी होगा। गाँव में शान्ति, प्रेम और शरीर-श्रम को अवकाश मिलेगा तथा गाँव में शान्ति होगी।

पैसे को व्यर्थ का महत्त्व न दें

आजकल एक और दोष चला है। वह है पैसे को महत्त्व देना। वास्तव में पैसे का कुछ भी मूल्य नहीं। उसकी कीमत स्थिर नहीं होती। उतरती है और चढ़ती रहती है, लेकिन एक सेर चावल जो पोषण आज देता है, वही पोषण कल भी देगा। फिर भी कहा जाता है कि चावल की कीमत क्या हुई है? किन्तु कीमत घटी है पैसे की, चावल की नहीं। यह सारा पैसे का इन्द्रजाल है।

इसलिए इसे बहुत कीमत नहीं देनी चाहिए। उसपर इतनी श्रद्धा नहीं होनी चाहिए।

सारी खुराफातों की जड़ पैसे को कारोबारी बनाना

आज हमने पैसे को कारोबारी बनाया है। इसीलिए देश में नीतिमत्ता क्षीण हो गयी है। बहुत से लोग शिकायत करते रहते हैं कि घूसखोरी खूब चलती है, लोग बड़े अत्याचारी हो गये हैं। किन्तु मैं कहता हूँ कि जरा सोचिये कि हममें पहले से भक्तिभाव, श्रद्धा और विश्वास बढ़ा है। व्यभिचार, क्रोध जैसे दोष बढ़े नहीं हैं, पहले से कम ही हुए हैं। दोष बढ़े हैं तो केवल आर्थिक क्षेत्र में ही। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो आज पहले से काम और क्रोध कम हुआ और लोभ बढ़ा है। इसका कारण एक ही है कि हमने पैसे को कारोबारी बनाया। वह भूल हमें सुधारनी चाहिए। आज तो हर काम में पैसे की याद आती है। धार्मिक काम हो तो भी पैसे के बिना नहीं चलता। लड़का अगर पढ़ा-लिखा हो तो शादी में दहेज की बात आती है। इस तरह सभी जगह पैसा आया है, फिर पैसे की कीमत घटी है। इसलिए ज्यादा सूद लेने की वृत्ति बढ़ी है। यह सब इसीलिए हुआ कि हमने पैसे को कारोबारी बनाया है। वह गाँव में आया है, इसीलिए दुःख बढ़ा है।

ग्रामदान कानून से बचाव का साधन

कुछ लोग ग्रामदान के काम की तुलना सरकारी काम के साथ करते हैं। दोनों को एक ही प्रकार का मानते हैं, लेकिन घोड़े और गधे में कोई फर्क न देखें तो क्या कहा जाय? मैं तो इसके आगे भी जाकर कहता हूँ कि इस तरह की तुलना घोड़े और बैल की तुलना है। मैं तो गाँववालों को निर्भय बनाना चाहता हूँ। सरकारी कानून वहाँ दखल न करे, यह मैं चाहता हूँ। कानून चाहे कितने ही अच्छे उद्देश्य से बनाया जाय तो भी कुछ न कुछ तकलीफ देता ही है। इसलिए प्रत्येक गाँव स्वतंत्र होना चाहिए और प्रत्येक गाँव में स्वराज्य आना चाहिए तो गाँव कानून से बचेगा। आध्यात्मिक संस्कृति की बुनियाद मजबूत होगी। यही मैं चाहता हूँ। इसमें कोई भय नहीं है। आप अपने पाँव पर खड़े हो जाइये। आप अपने कानून बनाइये तो सरकार आपको सलाह देगी, लेकिन आपके कामों में दखल न देगी।

शीघ्र ग्राम-संकल्प कीजिये

इसलिए आप गाँव का एक परिवार बनाने का संकल्प कीजिये। बाहर से दैनिक आवश्यकता की चीजें न लानी पड़ें। उन्हें गाँव में ही बनाने का संकल्प कीजिये। गाँव में सामूहिक दूकान भी हो। किसीकी हुकूमत गाँव में न हो। यह तब होगा, जब गाँव का परिवार बनेगा। आजतक अपना झगड़ा दिल्ली, बंबई से लेकर लंदन तक जाता था, किन्तु स्वराज्य मिलने के बाद दिल्ली के बाहर झगड़ा नहीं जाता, याने देश में स्वराज्य आ गया है। इसी तरह ग्राम-स्वराज्य का अर्थ है, गाँव का झगड़ा गाँव के बाहर न जाना। गाँव का कानून ही गाँव में चलेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि हमें केन्द्रीय सरकार से अलग होना है। हम उसे कर देते हैं तो वह विदेश से सम्बन्ध रखेगी, देश का संरक्षण करेगी और रेलवे आदि का काम करेगी। यदि ऐसा हो तो गाँव में नीतिमान, निष्ठावान, पराक्रमी लोग होंगे और देश की उन्नति होगी। इसलिए जल्दी से जल्दी गाँव का संकल्प कर ग्रामदान करना चाहिए। ग्रामदान के साथ गाँव में गुण-विकास की योजना भी होनी चाहिए। परस्पर सहयोग, व्यवहार-कुशलता, आयात-निर्यात का विचार करने की योग्यता, निर्भयता आदि गुण होंगे तो गाँव में धर्म, ज्ञान, कला, संगीत, चित्रकला बढ़ेगी। यह सारा गाँव में हो सकता है। इसीका नाम है गुण-विकास। यह होगा तो ग्रामस्वराज्य मजबूत होगा। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

ओरी (भरुच) ८-१०-'५८

ग्रामदान में तीनों शक्तियों का मौलिक प्राकट्य

आज हमारे स्वागत में जो एक वाक्य लिखा गया था, उसे मैंने पढ़ा। वह वाक्य था "लक्ष्मी जो हरती फरती रहेशे तो दुनिया हसती रमती रहेशे।" याने लक्ष्मी अगर चलती-फिरती रहेगी तो दुनिया हँसती-खेलती रहेगी। मुझे लगा कि इस गाँव के लोग बहुत बारीकी से परिस्थिति को जानते हैं और इनमें विचार की तह में जाने की ताकत है।

शक्ति का अर्थ संहारक नहीं

हिन्दुस्तान में तीन शक्तियाँ हैं, जिनसे व्यक्ति और समाज का जीवन उन्नत होता है। इनका सबको अनुभव है, पर आज हम भूल गये हैं कि देश का स्वरूप क्या है? ये तीनों शक्तियाँ तीन देवता हैं। शक्तिदेवी संहारकारिणी मानी जाती है। पर वास्तविकता ऐसी नहीं है। शक्ति का अर्थ है आरोग्यदेवता। इसलिए एक को शक्ति मिले तो दूसरे को लाभ ही होगा। मेरा स्वास्थ्य सुधरेगा तो आपका कुछ न बिगड़ेगा। स्वास्थ्य में एक-दूसरे का हित एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं होता। फिर भी हम देखते हैं कि शक्ति का अर्थ "संहारक" ही लिया जाता है और शस्त्रास्त्र इतने अधिक बढ़ रहे हैं कि शक्ति देवी का रूपान्तर राक्षसी में हो रहा है। एक देश को शक्ति बढ़ने से दूसरे देश को डर लग रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि आज शक्ति निर्मल देवता नहीं रही। वह संहारक और परपीड़क हो गयी है।

पैसे के कारण लक्ष्मी राक्षसी

इसी तरह लक्ष्मी को बनाया गया है। आज "लक्ष्मी" का अर्थ "पैसा" ही मान लिया है। किन्तु लक्ष्मी देवी है। खेती में जो श्रम का उत्पादन होता है, वही लक्ष्मी है। जो श्रम का उपासक होगा, उद्योग करनेवाला होगा, उसे लक्ष्मी वरण करेगी। गेहूँ, चावल, दूध, तरकारी यह सब लक्ष्मी है। यह लक्ष्मी मेरे घर में बढ़ेगी तो मैं आपको इसमें से कुछ दूँगा ही। इससे आपका बिगड़ेगा नहीं। गाँववालों को चाहिए कि गाँव में जो लक्ष्मी पैदा हो, उसे बाहर न बेचें। किन्तु वे उसे बाहर बेचते हैं। इसीलिए लक्ष्मी देवी का रूपान्तर राक्षसी में हो रहा है। उससे एक-दूसरे के लिए भय पैदा होता है। मेरे सुखों में आपका सुख और मेरे दुःखों में आपका दुःख, ऐसा हो और जगह-जगह लक्ष्मी बढ़े तो देश की संपत्ति भी बढ़ेगी।

पैसा कम से कम, लक्ष्मी अधिक से अधिक

हिन्दुस्तान में कपास ज्यादा है तो गाँवों में ही कपड़ा बनाना चाहिए। उसके लिए कपास में कम से कम जमीन जायगी। इस तरह आवश्यकता के अनुसार फसल पैसे का साधन हो गया है। वस्तुतः कपास भी लक्ष्मी देवी है, पर यदि उसका रूपान्तर पैसे में हो जाय तो वह राक्षसी बनेगी। भगवान ने महुवा और अंगूर जैसे सुंदर फल दिये हैं, किन्तु मानव उसका रूपान्तर शराब में करता है तो नुकसान ही होगा। इसलिए हमारे पास पैसा कम से कम हो और लक्ष्मी ज्यादा से ज्यादा। आज भारत में पैसा बढ़ा है, पर जीवनदान घटा है, इसीलिए जीवन सुखी नहीं है।

सरस्वती का भी अज्ञान में रूपान्तर

इसी तरह सरस्वती का अर्थ है ज्ञान, किन्तु उसका भी रूपान्तर हमने इस तरह किया है, जिससे अज्ञान ही बढ़ता है। हर-एक के पास यह देवी रहनी चाहिए। भगवान ने हरएक को थोड़ी-थोड़ी बुद्धि दी है। पर हम उसका विकास नहीं करते। यदि हम ज्ञान प्राप्त नहीं करते तो बुद्धि का उपयोग नहीं किया, ऐसा ही कहा जायगा। आज तो विज्ञान भी बहुत बढ़ रहा है, पर इसका ज्ञान गाँव-गाँव में नहीं पहुँचा है। मैं विद्वानों के सम्पर्क में काफी आया हूँ। ज्ञानियों के सम्पर्क में आने से भी मुझे डर लगता है, क्योंकि उनके पास आत्मज्ञान नहीं, मिथ्या ज्ञान है। इसलिए सरस्वती का उपयोग भी हमने योग्य तरह से नहीं किया।

संगीत की यह छीछालेदर

सरस्वती संगीत और कला है। किन्तु आजकल संगीत भी इतना भद्दा चलता है कि वह सुनने की इच्छा भी नहीं होती। भक्तों ने भगवान के लिए ही सारे भजन गाये हैं। उनमें जो भक्ति-रस है, वे हृदय को छूते हैं। जहाँ भक्तिमय संगीत चलेगा, वहाँ सुसंवाद ही रहेगा। लेकिन कभी-कभी जब मैं शहर में रहता हूँ तो वहाँका संगीत सुनकर मुझे आश्चर्य होता है कि इसमें लोगों को रस कैसे आता होगा? रात का समय सोने का होता है। रात का सोना याने अंतिम क्षण जैसे होता है और अंतिम समय का स्मरण बहुत महत्त्व का होता है। इसलिए अन्तिम स्मरण में ईश्वर का ध्यान ही होना चाहिए। परन्तु उसके लिए सारा जीवन उस ढंग से बनाना चाहिए। उससे मनुष्य को अन्तिम क्षण में परमेश्वर की याद आयेगी और उसका ध्यान अन्त में वह कर सकता है। परन्तु शहर में रात में सिनेमा देख और संगीत सुन लोग तुरन्त सो जाते हैं तो अन्तिम कार्य सिनेमा का दर्शन और सिनेमा के गीत ही होता है। वही दूसरे दिन याद रह जाता है। क्योंकि निद्रा के समय बोये गये उस बीज का निद्रा में विकास होता है और जागने पर वह फूट पड़ता है। निद्रा के बाद सुबह उठते ही सोते समय किये गये ध्यान का फल तुरन्त मिल जाता है। साधना करनेवालों को इसका पूरा अनुभव है।

आज साहित्य का रूपान्तरण

साहित्य, कला, चित्र, इन सबमें सरस्वती का दर्शन होता है। सच्ची, सुन्दर भावना देखने को मिलती है। वेद में एक वचन आया है—"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।" याने जिस तरह हम चलनी लेकर चालते और अनाज में से कंकड़ चुन-चुनकर निकालते हैं, उसी तरह समाज में वाणी की चलनी हो तो वह समाज आगे बढ़ता है। जहाँ सच्ची, मंगल और मधुर वाणी हो, वहाँ लक्ष्मी रहती है। किन्तु इन दिनों साहित्य भी बच्चों को ऐसा पढ़ने को मिलता है, जिससे उनका कुछ भी विकास नहीं होता। १९१६ में मैं कालेज में था। मैंने दूसरी भाषा के तौर पर फ्रेंच ली, संस्कृत नहीं। अगर संस्कृत लिये होता तो मेरा आत्म-घात होता। उन दिनों संस्कृत का खराब से खराब साहित्य कालेज में पढ़ाते थे, जब कि फ्रेंच साहित्य बहुत ही प्रेरणादायी था। असल में संस्कृत में उपनिषद, वेद, दर्शन सब कुछ है। किन्तु कालेजों में लड़कों को यह नहीं सिखाया जाता। संस्कृत के नाटक वगैरह सिखाते हैं, जिनमें संस्कृत की विशेषता ही नहीं है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि आत्मा का उत्थान चाहते हो तो यह शक्ति संस्कृत-साहित्य में मिलेगी। वह जड़ को चेतन बनानेवाला है। किन्तु राज-दरबार में रहनेवाले कवियों ने उसमें शृंगार-रस बैठा दिया और वही साहित्य उन दिनों कालेज में सिखाते थे। मुझे शंका है कि आज भी इसी तरह का साहित्य सिखाते होंगे। इस तरह का साहित्य सिखाने के बजाय संस्कृत न सीखें, यही अच्छा है।

वाणी का दुरुपयोग न करें

इस तरह आज हमने सरस्वती का रूपान्तर राक्षसी में कर दिया है। तुलसीदास ने कहा था कि वाणी से हमेशा सत्य बोलना चाहिए। करुणा परक वचन बोलने चाहिए, भजन गाना चाहिए और प्रेम से बोलना चाहिए। मीरा बहुत दुःखी होती हुई माथा कूट कर रोती है—'सिर धुन-धुन पछतायी।" हमें वाणी का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

आज हमने तीनों देवियों को राक्षसी बनाया है। इसीलिए समाज में दुःख है। व्यापारियों की किताब में वे "श्रीहरि" लिखते और उसकी पूजा करते हैं। मैं कहता हूँ कि "श्रीहरि" याने "श्री" का हरण करनेवाला। पैसे को नहीं, लक्ष्मी को स्थिर मूल्य है। इसलिए लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति तीनों का उपयोग हमें अच्छी तरह करना चाहिए।

ग्रामदान में तीनों देवियों का दर्शन

जहाँ ग्रामदान होगा, वहाँ इन तीनों देवियों का मूलरूप प्रकट होगा। वहाँ फसल बढ़ेगी, दूध बढ़ेगा। किसी लड़के को भूख लगने पर वह किसी भी घर में जाकर खाना माँग सकेगा और किसी माँ को जरूरत पड़ने पर वह किसी भी लड़के को काम करने के लिए बुला लेगी। यह कलियुग है, इसमें ऐसा कैसे होगा? मैं कहता हूँ कि आज जैसा युग चाहें, वैसा ला सकते हैं। कृतयुग का अर्थ है, कृति करो, वैसा मिलेगा। इसलिए बाबा की यह बात इस युग में भी बनेगी। बाबा कहता है कि गाँव का एक परिवार बनाओ। यही समझाने के लिए वह गाँव-गाँव घूमता है।

खुशी की बात है कि लोगों के गले यह बात उतरती है। फिर भी लोग इतने पराधीन हो गये हैं कि "सरकार करेगी, सरकार करेगी" ऐसा ही जप करते हैं। उतने समय में वे अगर परमेश्वर का स्मरण करें तो उन्हें कितना लाभ हो। तेलगू में "प्रभु" का अर्थ ही "सरकार" होता है। आज लोगों ने सरकार को प्रभु की जगह बिठा दिया है। सभी यही सोचते हैं कि सुधार या कोई भी काम सरकार करेगी तो होगा। हम करेंगे तो होगा, ऐसी संकल्प-शक्ति हममें नहीं है। यह शक्ति जब आयेगी, तभी समाज स्वतन्त्र होगा। "हम जो करेंगे, वह होगा" ऐसी हिम्मत गाँव के लोगों में आनी चाहिए। गाँववालों को यह संकल्प करना

चाहिए कि "अपने गाँव का कारोबार हम ही करेंगे।" किन्तु आज सभी लोग सरकार पर आधार रखते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे खुद नहीं कर सकते। "हम खुद कर सकते हैं" यह भान उन्हें नहीं है। यह जागृति उनमें लाने के लिए मेरी यात्रा चल रही है। अगर आप यह संकल्प करें कि "अपने गाँव का कारोबार हम ही चलायेंगे और गाँव में लक्ष्मी, शक्ति, सरस्वती, तीनों के आधार पर समाज बनायेंगे" तो गाँव-गाँव में सुख, स्वास्थ्य और ज्ञान बढ़ेगा। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

राजकोट (सौराष्ट्र) २१-११-'५८

शान्ति-सेना ही बापू का सर्वोत्तम स्मारक

आज सुबह राजकोट में तो मैंने प्रेम का ज्वार ही देखा। इतना बड़ा उत्साह, प्रेम और स्नेह देखकर मेरा हृदय पिघल गया, कुछ अव्यवस्था अवश्य हुई, किन्तु प्रेम के उत्कर्ष में उस अव्यवस्था की गिनती ही नहीं होगी। यह ठीक है कि अव्यवस्थित प्रेम भी कभी-कभी बहुत नुकसान कर बैठता है, पर कुल मिलाकर जो प्रेम का दर्शन हुआ, उसे देख मुझे खुशी हुई। आज हमारे साथ की एक बहन को चोट भी आयी। इसलिए आखिर में व्यवस्था का काम पाकिस्तानी अयूबखान की तरह मैंने ही अपने हाथ में ले लिया और बीच में दौड़ना भी पड़ा। फिर भी यह सारा स्मरण बहुत मीठा रहा।

भगवान की व्यापक प्रेम-योजना

हममें यह जो प्रेम है, उसका शक्ति में रूपान्तर होना चाहिए। भाप को इंजन में रोकने से कितनी बड़ी शक्ति प्रकट होती है, यह सभी जानते हैं। किन्तु जब वह युक्ति हासिल नहीं थी तो भाप यों ही आकाश में चली जाती थी और उससे शक्ति प्रकट नहीं होती थी। उसे युक्तिपूर्वक काम में लगाने और व्यवस्थित बनाने पर ही शक्ति प्रकट हुई। इसी तरह हमारे देश में आठ साल से लगातार रोज मैं प्रेम का दर्शन कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि जनता के लिए यह प्रेम परमेश्वर का अत्यन्त शुभ आशीर्वाद है। परमेश्वर ने प्रेम के शिक्षण की एक योजना ही की है। वह हर बालक को माता के उदर से जन्म देता है। जन्म से ही उसे माता के स्नेह का परिचय होता है। बालक को स्नेह का शिक्षण हर घर में मिलता है। इस तरह उसने प्रेम को अत्यन्त व्यवस्थित और सहज चीज बनाकर प्रत्येक मनुष्य को प्रेम का शिक्षण मिलने की अत्यन्त व्यापक योजना बनायी। इसलिए प्रेम तो परमेश्वर का वरदान ही है। मनुष्य जीवन में जो कुछ भी आनन्द है, वह इसी प्रेम के कारण है। बहुत साल पहले जब मैं साबरमती में था तो वहाँ एक गुजराती गीत सुनता था। वह गीत मेरे ध्यान में रह गया :

"मातप्रेम, तातप्रेम, पुत्रप्रेम, पुत्रीप्रेम।
प्रेमज छे संसार-सार, प्रेमज छे संन्यासाधार॥"

आखिरी पंक्ति में बहुत महत्त्व की बात है। मुझे तो उससे बहुत ही मदद मिली।

संन्यास का भी लक्ष्य प्रेम का व्यापक प्रसार

संन्यासी संन्यास लेता है तो प्रेम के लिए ही लेता है। जो प्रेम घर में विकसित हुआ, जो प्रेम मनुष्य विशेष के लिए मर्यादित हुआ, वह विश्व-व्यापक हो, इसीलिए संन्यासी संन्यास लेता है। संन्यासी प्रेम को नहीं छोड़ता। वह अप्रेम, द्वेष और विकार को छोड़ता है। प्रेम विश्व-व्यापक कैसे हो, इसकी खोज में वह घर छोड़कर निकलता है। घर से ऊबकर द्वेष से घर छोड़नेवाला संन्यासी नहीं कहा जायगा। परन्तु घर में प्रेम का सीमित प्रयोग हुआ और उसमें भी बहुत यश मिला, अब घर में जो प्रयोग यशस्वी हुआ, वह सारे समाज को लागू करने के लिए उसका व्यापक विनियोग करने के लिए घर छोड़कर संन्यासी घूमता है। विज्ञान के प्रयोग इसी तरह होते हैं। प्रयोगशाला में एक प्रयोग होता है, वह छोटे प्रमाण में होता है। छोटी-सी प्रयोगशाला में किया हुआ छोटा-सा वैज्ञानिक प्रयोग सफल हो जाने पर उसका राष्ट्र में और समाज में व्यापक रूप में उपयोग करने की योजना होती है। इसी तरह आध्यात्मिक क्षेत्र में भी प्रेम का व्यापक प्रयोग करने के लिए संन्यासी घर छोड़कर निकलता है। जैसे बुद्ध भगवान निकले थे और जैसे मैं भी निकला हूँ। इसमें अत्यन्त प्रेम की दृष्टि ही है। आप कल्पना कर सकते हैं कि एक मनुष्य आठ-आठ साल तक लगातार घूमने पर भी क्यों नहीं थकता और वह क्यों घूमता है? स्पष्ट है कि उसे दूसरी कोई प्रेरणा नहीं, केवल प्रेम की ही प्रेरणा है।

प्रेम की शक्ति प्रकट करनी ही होगी

किन्तु आश्चर्य है कि प्रेम का इतना बड़ा अनुभव होने पर भी मनुष्य को उस प्रेम पर विश्वास नहीं हुआ है। प्रेम में संरक्षण की शक्ति है, राष्ट्र-रक्षण की शक्ति है, यह विश्वास अभी तक उसे नहीं हुआ। लेकिन विज्ञान के जमाने में ऐसा विश्वास पैदा होना अत्यावश्यक है। यदि इस जमाने में प्रेम व्यापक हो और प्रेम की शक्ति पर मनुष्य का विश्वास बैठ जाय तो विज्ञान के प्रचार के कारण किसी प्रकार की अड़चन या रुकावट नहीं आयेगी। प्रेम और विज्ञान याने अहिंसा और सत्य। ये दोनों साथ-साथ ही होते हैं। यदि हम सत्य का विश्लेषण करें तो ध्यान में आयेगा कि विज्ञान यह सत्य की खोज है और प्रेम और विज्ञान याने अहिंसा और सत्य ही है। इस तरह से अगर हम इन दोनों को एक साथ रखें तो पृथ्वी पर स्वर्ग ला सकते हैं। अगर ऐसा न हो और हम प्रेम के बदले शस्त्र-शक्ति से ही रक्षण होने पर विश्वास रखें तो दिन-प्रतिदिन ऐसे भयानक शस्त्र निर्माण हो रहे हैं कि वे मनुष्य के हाथ में न रह सकेंगे। तब तो विज्ञान-युग में विज्ञान और हिंसा मिलकर सर्वनाश ही होगा। विज्ञान के जमाने में इन दो समीकरणों के सिवा तीसरा समीकरण ही नहीं है। बहुत खुशी की बात है कि विज्ञान में हमारे सामने दो ही मार्ग खुले रहते हैं। या तो विज्ञान के साथ प्रेम की शक्ति जोड़ दुनिया में स्वर्गीय जीवन का अनुभव करो या विज्ञान के साथ हिंसा जोड़ दुनिया का समूल नाश कर दो।

अणुशक्ति संसार के लिए वरदान

आज बड़े-बड़े न्यूक्लियर वेपन, अणुशस्त्र निकल रहे हैं। यह बड़ी खुशी की बात है। मुझे उसमें जरा भी भय महसूस नहीं

होता है। अगर भय है तो आपकी यह लाठी, बन्दूक, स्टेनगन और तलवार में है। आणविक शस्त्र तो अहिंसा को बिलकुल नजदीक लानेवाला है। इसीलिए मैं उसे अवतार मानता हूँ। मनुष्य को यह अवतार मिला है और अहिंसा उसके बहुत नजदीक आ गयी है। अहिंसा के लिए दुनिया तैयार है। यह सारा मानव-समूह यहाँ किसलिए इकट्ठा हुआ है? ये लोग जानते हैं कि बाबा प्रेम-शक्ति का आवाहन करता है और इसकी दुनिया को बड़ी तृष्णा है। इसीलिए वे सारे सुनने के लिए आते हैं। फिर भी यह कैसे हो, इसका भान उन्हें नहीं है। प्रेम-शक्ति की अत्यन्त जरूरत है, इसका लोगों को भान हो गया है। पर वह कैसे विकसित हो, यह समझना बाकी है। अपने देश की ही नहीं, दूसरे देश की भी यही स्थिति है। आज सारी दुनिया को प्रेम की अत्यन्त आवश्यकता है। दुनिया के लोगों को अब यह भान होने लगा है कि आज हिन्दुस्तान में चल रहे भूदान और ग्रामदान से शायद अहिंसा की रक्षणकारिणी और तारिणी शक्ति पैदा हो। इसीलिए वे इस बारे में जानने के लिए उत्सुक हैं। अपने देश में भी यह उत्सुकता है।

यह काम स्वयं आपको करना होगा

किन्तु यह कौन पैदा करेगा? क्या यह शक्ति बाबा पैदा करेगा? आपका भोजन आपको ही करना होगा और बाबा का भोजन बाबा करेगा। इसीलिए गीता में कहा है—"उद्धरेदात्मनात्मानम्" अपनी आत्मा का उद्धार अपनी आत्मा ही करेगी। इसके लिए कोई बड़ा मनुष्य आयेगा, अवतार लेगा, यह सोचते हुए राह देखना ठीक नहीं। आखिर अवतार का अर्थ यही है कि करुणा में परिवर्तन की तड़पन। मानव-हृदय में जो तीव्र तड़पन है और जो सद्भावना प्रकट होती है, उसीके परिणामस्वरूप किसी शक्ति का उदय होता है। वह शक्ति मनुष्य को निमित्त बनाती है, यह अलग बात है। किन्तु वह तो निमित्त-मात्र होता है। गांधीजी हिन्दुस्तान में नहीं आते तो दूसरा कोई आता। क्योंकि गांधीजी ने हिन्दुस्तान को जो साधना बतायी, उसकी हिन्दुस्तान को अत्यन्त आवश्यकता थी। वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। टैगोर के शब्दों में "प्रथम प्रभात उदित तव गगने, प्रथम सामरव तव तपोवने।" ऐसा ज्ञान-वैभव जिस देश में था, जिस देश में सन्तों की अखंड परम्परा चली, वह देश कायम के लिए गुलाम रहने का निर्णय करें, यह सम्भव नहीं था। इसलिए ऐतिहासिक आवश्यकता निर्माण हुई कि ऐसा एक रास्ता, एक युक्ति ढूँढ़नी चाहिए, जिससे बिना शस्त्र के शस्त्रधारियों के साथ मुकाबला कर सकें। इसके लिए गांधीजी निमित्तमात्र बन गये। अगर वे न खड़े होते तो दूसरा कोई व्यक्ति निमित्तमात्र बनता।

सारे समाज में आकांक्षा प्रकट हो

जब मनुष्य के हृदय में एक आकांक्षा उत्पन्न होती है तो फिर वह सिद्धान्त-दर्शन का रूप लेती है और नयी आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव होता है। फिर इस शक्ति का विकास करने के लिए निमित्तमात्र मनुष्य पैदा होते हैं। उसका कोई महत्त्व नहीं। आकांक्षा को आकार देनेवाला मनुष्य निमित्तमात्र होता है। उसके पीछे दर्शन की प्रेरणा होती है और वह काम करती है। यह सब तभी होता है, जब सारे समाज में आकांक्षा पैदा होती है। भारत में स्वराज्य के लिए ऐसी ही आकांक्षा हुई थी। जो साधन गांधीजी ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया था, उसका हमने बहुत अच्छा प्रयोग किया, ऐसा नहीं, फिर भी जैसा-तैसा प्रयोग अवश्य किया और उसीके परिणाम-स्वरूप भारत में जो सुप्त आकांक्षा जागृत हुई, वह सारे भारत में मूर्तरूप होकर प्रेरणा दे कि अब यहाँ प्रेम-शक्ति प्रकट हो।

मानव से मानव को इतना भय बड़ी शर्म की बात

आज हमारी सरकार एक ओर सेना पर प्रतिवर्ष तीन सौ करोड़ रुपये खर्च करती है तो दूसरी ओर भारत सरकार और प्रांतिक सरकार मिलकर प्रतिवर्ष पचपन लाख नौकरों पर दो सौ करोड़ रुपये। इनके सिवा इस कृषिप्रधान देश के लिए बाहर से प्रतिवर्ष सौ करोड़ रुपयों का अनाज मँगवाना पड़ता है। इससे बड़ी लांछन की बात क्या हो सकती है? जरा सोचिये कि आपकी और मेरी रक्षा के लिए हमारी सरकार तीन सौ करोड़ रुपयों का खर्च कर रही है, तब हम सब लोग यहाँ बैठे हैं और सुरक्षित हैं। अगर ऐसा न होता तो कौन जाने क्या बात होती और आपकी और मेरी स्थिति क्या होती? आज इतना बड़ा भय फैला हुआ है। हम भारतीय ही नहीं, अमेरिका, फ्रान्स, रूस, इंग्लैण्ड आदि सभी देशों के लोग इसी तरह डरते हैं कि आज मनुष्य का रक्षण असम्भव हो गया है। इसलिए शस्त्र तो रखने ही चाहिए। लेकिन आज मानव को भय किसका है? एक जमाने में हिंसक जानवर और मनुष्य के बीच लड़ाई चलती थी और उसमें मनुष्य जीतता था। सिंह जैसे हिंसक प्राणी का भी मुकाबला किया जाता था, फिर भी उसे उसके लिए इतने बड़े भयानक शस्त्रास्त्र निर्माण करने की जरूरत कभी नहीं हुई। अब मनुष्य ने दयालु बनकर सिंह की कौम कायम रखने के लिए गिरनार के जंगल में दो सौ, तीन सौ सिंह रखे हैं और ये सारे अपने देश के गिने हुए सिंह हैं। गुजरात के दयालु लोगों ने इन सिंहों के लिए गिरनार का जंगल रखा है। परन्तु अगर मनुष्य यह माने तो सारे सिंह की जात को नाबूद कर सकता है। सारे भारत भर में एक भी सिंह न रहे, ऐसा कर सकता है। इतने बड़े हिंसक सिंह के संहार के लिए भी भयानक शस्त्र की जरूरत नहीं थी। फिर भी आज मनुष्य को मनुष्य से रक्षण करने के लिए इतने भयानक शस्त्र की जरूरत पड़ी है, इसे क्या कहा जाय? जब मैं यह सारा विचार करता हूँ तो मुझे बहुत शरम आती है। [चालू]

अनुक्रम

१. निष्ठापत्र की निष्ठाओं का स्पष्टीकरण
रणोली ३० अक्तूबर '५८ पृष्ठ ८८५
२. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय...!
जम्मू १६ जून '५८ „ ८८६
३. आजकी स्थिति में "सत्याग्रह" का स्वरूप क्या है?
बोरसद २ नवंबर '५८ „ ८८८
४. ग्रामदान के साथ विकास की योजना
रजुवाड़िया ७ नवंबर '५८ „ ८९२
५. ग्रामदान में तीनों शक्तियों का मौलिक प्राकट्य
ओरी ८ अक्तूबर '५८ „ ८९३
६. क्रांति-सेना ही बापू का सर्वोत्तम स्मारक
राजकोट २१ नवंबर '५८ ८९५

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।